Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 3 ~ Issue 2 (2015) pp: 73-77
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

भारत में प्रतिनिहित विधान
(DELEGATED LEGISLATION IN INDIA)

डॉ0 राधिका देवी
विभागाध्यक्ष(राजनीति विज्ञान)
ए0के0पी0(पी0जी0) कॉलिज, खुर्जा
जिला–बुलन्दषहर (उ0प्र0)

आधुनिक काल में **'प्रतिनिहित विधान'** प्रशासन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है। **लॉर्ड हेबार्ट** ने इसे **'नवीन निरंकुषता'** नाम दिया है। इसके लिए **'प्रत्याधिकृत विधान',प्रत्यायुक्त विधि निर्माण',प्रतिनिहित विधान''हस्तान्तरित विधि निर्माण',** आदि नामों को प्रयोग किया जाता है।

प्रतिनिहित विधान : अभिप्राय
(DELEGATED LEGISLATION: MEANING)

विधि निर्माण संसद का कार्य हैं, लेकिन संसद द्वारा वर्तमान समय में जितनी भी विधियां पारित की जाती हैं उनका स्वरूप अस्थिपंजर के ही समान होता है। संसदीय विधियों में नियमों की एक मोटी रूपरेखा होती है। संसद द्वारा निर्मित विधि की मोटी रूपरेखा को विभागीय आदेशों अथवा प्रशासनिक आज्ञाओं द्वारा रक्त, मांस प्रदान किया जाता है, इसी को प्रतिनिहित विधान कहते हैं।[1] ससंद केवल सामान्य और स्पष्ट भाषा में विधियों का निर्माण करती हैं। विधियों की बारीकियों और ब्यौरों की बातों को उनमें जोड़ना शासकीय विभागों का काम है। वे ससंद द्वारा प्रदत्त सत्ता के आधार पर आदेश तथा नियम, विनियम तथा उपनियम जारी करते हैं। दूसरे शब्दों में, उन आदेशों, नियमों तथा उपनियमों को, जो संसद की किसी विधि द्वारा प्रदत्त के अन्तर्गत कार्यपालिका अथवा प्रशासन के द्वारा जारी किए गए हों, प्रतिनिहित विधान के नाम से सम्बोधित किया जाता है।[2] चूंकि ये आदेश तथा नियम संसदीय विधियों के अधीन निर्मित और पारित किए जाते हैं, इसलिए इन्हें 'अधीन विधान' भी कहते हैं। साथ ही, चूंकि संसद ही प्रशासन को यह शक्ति प्रदान करती हैं, अतः इसे **'हस्तान्तरित','प्रत्यायोजित'** अथवा **प्रदत्त व्यवस्थापन** के नाम से भी पुकारा जाता है।[3] इनके सम्बन्ध में कार्यपालिका को विधायिनी शक्ति सीधे संविधान से प्राप्त नहीं होती; अतः उसकी विधायिनी सत्ता मौलिक न होकर प्रदत्त होती है। इसके उपरान्त भी इनका प्रभाव संसदीय विधि के समान ही होता है।[4]

प्रतिनिहित विधान की वृद्धि के कारण
अथवा
प्रदत्तीकरण की आवष्यकता
(REASONS FOR THE GROWTH OF DELEGATED LEGISLATION)

तीव्रगामी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों के कारण वर्तमान समय में प्रतिनिहित विधि निर्माण अपरिहार्य हो गया है। इसकी मात्रा में दिनोंदिन वृद्धि हो रही है जिसके कई कारण हैं : पहला, वर्तमान समय में का राज्य लोककल्याणकारी, समाजवादी राज्य है, जिसका कार्यक्षेत्र बहुत अधिक बढ़ गया है। राज्य के कार्यक्षेत्र में विस्तार के कारण संसद द्वारा निर्मित विधियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है।[5] अत्यधिक कार्यभार होने के कारण संसद विधियों की मोटी रूपरेखा का निर्माण करती है जिसमें सरकार की नीतियों एवं उद्देश्यों का समावेश कर दिया जाता है। विधियों की सूक्ष्म एवं विस्तृत रूपरेखा तैयार करने का दायित्व कार्यकारी विभागों के ऊपर छोड़ दिया जाता है।[6] दूसरे, वर्तमान समय में अधिकांश विधियां प्राविधिक प्रकृति की होती हैं और संसद में विधि के तकनीकी विशेषज्ञों का होना अपेक्षित नहीं है। संसद के सदस्य अपने–अपने निर्वाचन क्षेत्रों में लोकप्रिय नेता होते हैं और उनका निर्वाचन भी विशिष्ट तकनीकी योग्यता के आधार पर नहीं होता। अतः संसद जटिल विषयों से सम्बन्धित विधियों की केवल रूपरेखा ही बना सकती है तथा इस रूपरेखा के आधार पर प्रशासनिक विभाग पूरे विधान की रचना करता है। **तीसरे,** संसद को सदा ही समय की कमी रहती है।[7] यहां यह उल्लेखनीय है कि ससंद ने बैठक के दिन बढ़ाकर अपने काम का समय भी बढ़ाया है। जैसे कि ब्रिटिश संसद 116 दिन तथा 904 घण्टों के बजाय अब 161 दिन तथा 1320 घण्टे वर्ष भर में कार्य करती है और भारतीय संसद वर्ष में लगभग 7 माह तक विधि निर्माण के कार्य में संलग्न रहती है। फिर भी वे समस्त विधियों को विस्तृत रूप में पारित नहीं कर पाती हैं। अतः उनके सामने एक ही विकल्प है कि वे अपनी कुछ सत्ता हस्तान्तरित कर

दें। 'मन्त्रियों के अधिकारों सम्बन्धी समिति' के प्रतिवेदन में कहा गया है कि 'यदि संसद व्यवस्थापन कार्य को हस्तान्तरित नहीं करती है तो वह ऐसी विशिष्ट श्रेणी का विधान नहीं कर पाएगी जैसा कि वर्तमान समय में का जनमत चाहता है।[8]**चौथे,** समय के परिवर्तन के साथ–साथ नियमों में भी परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। संसद यह कार्य शीघ्रता से नहीं कर सकती क्योंकि उसकी बैठकें निरन्तर नहीं होती हैं। बहुत–से कानून ऐसे होते हैं जो समय और परिस्थति के अनुसार कार्यान्वित होने चाहिए, अन्यथा वे अर्धहीन हो जाते हैं। यदि कार्यपालिका नियम बनाती हैं तो उन्हें बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप सरलता से आवश्यकतानुसार ढ़ाला जा सकता है।[9] पांचवे, आपातकालीन स्थिति का सामना करने के लिए सरकार को कई बार तत्काल कानूनों की आवश्यकता होती हैं।[10] कई बार सरकार के लिए संसद का अधिवेशन तुरन्त बुलाना सम्भव नहीं होता। इसलिए बहुधा पुराने कानूनों में परिवर्तन करके अथवा किसी आदेश, नियम अथवा उपनियम द्वार उसकी अनुपूर्ति करके सरकार उस स्थिति का सामना कर लेती है। **सेसिल कार** के अनुसार, ''आपातकाल में विधायन शक्ति को अधिक से अधिक प्रदत्त किया जाना चाहिए।''

वस्तुतः प्रतिनिहित विधान के औचित्य का विवेचन करते हुए कई विद्धानों एवं विधिवेत्ताओं ने संसदीय समय का अभाव और विषय–वस्तु की तकनीकी प्रकृति पर ही अधिक जोर दिया है।[11] संक्षेप में, जहां विषय–वस्तु में विशेष अत्यावश्यक या बार–बार परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, वहां प्रतिनिहित विधान की व्यवस्था उचित होती है। परन्तु जहां इसका प्रयोग इसके अतिरिक्त होता है, वहां इसका औचित्य समाप्त हो जाता है।[12] न्यायमूर्ति महाजन के अनुसार, प्रतिनिहित विधान की शक्ति प्रदान करना आज के औद्योगिक समाज में उतना ही आवश्यक है जितना कि राज्य द्वारा समाज–हित के दायित्व को स्वीकार करना।[13]

प्रतिनिहित विधान का प्रारम्भ : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(ORIGIN OF THE DELEGATED LEGISLATION : HISTORIAL BACKGROUND)

ब्रिटेन में प्रतिनिहित विधान की प्रक्रिया का प्रारम्भ सन् 1848 में हुआ जबकि ''स्वास्थ्य के सामान्य मण्डल'' की स्थापना हुई थी। संयुक्त राज्य अमरीका में ''राज्य आयोग'' की स्थापना के साथ यह प्रक्रिया सन् 1888 के लगभग शुरू हुई। नये संविधान के निर्माण से पूर्व भारत का केन्द्रीय विधान मण्डल प्रभुसत्ताविहीन विधि निर्मात्री व्यवस्थापिका ही कहा जा सकता है। सर्वप्रथम सन् 1878 में ''बुरा विवाद'' में भारतीय विधान मण्डल द्वारा विधायन शक्तियों के हस्तान्तरण का प्रकरण विवाद के रूप में सामने आया। इसके पश्चात् बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से तो प्रतिनिहित विधान की शुरूआत तीव्र गति से हुई। सन् 1914 के डिटेक्टिव इन्सेण्ट्स एण्ड फेक पेवर्स अधिनियम के खण्ड 4 के अन्तर्गत सम्बन्धित विभाग को उपनियमों के निर्माण की शक्ति दी गयी। इस तरह सन् 1934 के भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम खण्ड 28 में शासन को नियमों एवं उपनियमों की रचना की शक्ति दी गयी। उसके बाद सन् 1934 के भारतीय विमान अधिनियम, भारतीय यातायात अधिनियम, 1938 के बीमा अधिनियम, मोटर गाड़ी अधिनियम, 1944 के केन्द्रीय आबकारी अधिनियम, सार्वजनिक ऋण विधि, इत्यादि द्वारा भी शासकीय विभागों को नियमों और उपनियमों को बनाने की शक्ति दे दी गयी। यह सर्वविदित है कि सन् 1947 का आयात तथा निर्यात नियन्त्रण अधिनियम एक अत्यन्त संक्षिप्त व्यवस्थापन विधि है। जिसमें आठ खण्ड हैं, परन्तु केन्द्रीय सरकार ने प्रतिनिहित विधान की प्रक्रिया के अन्तर्गत विशालतम आयात–निर्यात ढांचे एवं अनुज्ञा व्यवस्था की स्थापना की है। सन् 1949 में जितेन्द्रनाथ बनाम बिहार प्रान्त के प्रकरण में भारत के संघीय न्यायालय ने संसद द्वारा विधायन शक्ति के हस्तान्तरण की व्यवस्था को अवैध घोषित कर दिया था।[14] इस प्रकरण के फलस्वरूप प्रतिनिहित विधान के क्षेत्र में एक भ्रान्ति फैल गयी।[15] तथा एकाएक यह तथ्य उभर कर सामने आया कि भारतीय व्यवस्था के अन्तर्गत विधायिनी शक्तियों का प्रत्यायोजन अमान्य है।[16] इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत नवगठित उच्चतम न्यायालय से, तीन केन्द्रीय अधिनियमों : दिल्ली कानून अधिनियम 1912 के खण्ड 7, अजमेर मेरवाड़ा कानूनों का विस्तार अधिनियम 1947 के खण्ड 2 तथा 'ग' वर्ग के राज्यों के कानून अधिनियम 1950 के खण्ड 2 के सन्दर्भ में, उसका अभिमत जानना चाहा।[17] इन तीनों अधिनियमों द्वारा शासन को यह शक्ति दी गयी है कि वह देश के अन्य भागों में प्रवर्तित विधि को इन क्षेत्रों में लागू कर सकें और यदि आवश्यक समझें तो उनमें कुछ संशोधन के साथ उन्हें लागू करें। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त करते हुए तीनों ही अधिनियमों को वैध करार दिया कि ससंद को व्यवस्थापन कार्य तो स्वयं करना होगा परन्तु वह गौण विधान–कार्य दूसरे को सौंप सकती है, परन्तु साथ ही इसके लिए जरूरी है कि संसद अपनी नीति को स्पष्ट कर दें और नियम–उपनियम बनाने की सीमा भी निश्चित कर दें जिससे कार्यपालिका का अधिकार क्षेत्र सुनिश्चित हो सके। इसी तरह सन् 1955 का अत्यावश्यक वस्तु अधिनियम मात्र 16 खण्डों का केन्द्रीय अधिनियम है, परन्तु प्रतिनिहित विधान की प्रक्रिया के अन्तर्गत शासन ने विस्तृत आदेशों एवं निर्देशों के द्वारा आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन, वितरण, मांग तथा कीमतों की सम्पूर्ण व्यवस्था को ही नियन्त्रित और संचालित किया है। वस्तुतः अब प्रतिनिहित विधान की व्यवस्था को भारतीय संसद के व्यवस्थापन कार्यों के पूरक के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

*Corresponding Author: डॉ0 राधिका देवी

प्रतिनिहित विधान से लाभ
(ADVANTAGES TO DELEGATED LEGISLATION)

कार्यपालिका को नियम बनाने की शक्ति देने के कई लाभ हैं, जो इस प्रकार हैं :

● **संसद के कार्यभार में कमी और समय की बचत–** प्रतिनिहित विधान संसद कोकानूनों की विस्तृत रूपरेखा तैयार करने के कार्य से मुक्ति देकर कार्यभार को हल्का कर देता है। इसके फलस्वरूप संसद के समय की बचत होती है। चूंकि संसद को छोटी–छोटी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती, अतः वह सिद्धान्त तथा नीति सम्बन्धी बड़े मामलों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकती है।

●**विषेषज्ञों का उपयोग–** प्रत्यायोजन व्यवस्था में विशेषज्ञों के अनुभव तथा ज्ञान का लाभ प्राप्त हो जाता है। साधारण स्तर के विधायकों की तकनीकी जानकारी सीमित होती है। वे सामान्य सिद्धान्त उद्देश्य तो भली–भांति निर्धारित कर सकते हैं, किन्तु सूक्ष्म विवरणों के निर्धारण में वे उतने कुशल नहीं होते। प्रशासनिक अधिकारियों को ही केवल इस प्रकार का ज्ञान होता है कि क्योंकि उन्हें इसका अनुभव होता है और साथ ही ऐसी समस्याओं से वे हमेशा जूझते रहते हैं।

●**संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करना–** संसद कई सर्वव्यापक एवं सर्वदर्शी निकाय नहीं है उसके लिए भविष्य में आने वाली आकस्मिताओं के बारे में पहले से सोचना और उनके लिए कानून बनाना सम्भव नहीं है। भावी संकटकालीन परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए कार्यपालिका को प्रत्यायोजित शक्तियाँ प्रदत्त कर दी जाती हैं। इनके द्वारा ऐसी आपात स्थितियों को प्रभावशाली ढंग से निपटाया जा सकता है।

●**लचीलापन–**प्रतिनिहित विधान में से एक अन्य लाभ यह है कि इसके द्वारा शासन में लचीलेपन का गुण आता है। अधिनियमों में बिना औपचारिक संशोधन किए हुए उन्हें द्रुत गति से परिवर्तित हो रही स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप ढ़ाला जा सकता है। वर्तमान समय का युग वैज्ञानिक या प्रौद्योगिक प्रगति का युग है। इसमें प्रशासन में नमनीयता की विशेष आवश्यकता है। प्रतिनिहित विधान इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। प्रत्यायोजित नियमों में कानूनों की अपेक्षा अधिक सरलता से परिवर्तन किए जा सकते हैं।

●**प्रभावित व्यक्तियों से परामर्श–** प्रतिनिहित विधान के अन्तर्गत कार्यपालिका को नियम बताने की शक्ति प्रदान करके उन लोगों से परामर्श किया जा सकता है। जिनके हित सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। फलस्वरूप, जनसाधारण की इच्छानुकूल नीति क्रियान्वयन में परिवर्तन करना सम्भव होता है।

●**कार्यपालिका को स्वविवेकीय शक्तियां प्रदत्त करना–** अन्त में सत्ता के प्रत्यायोजन द्वारा कार्यपालिका को विदेशी आक्रमण, साम्प्रदायिक दंगे, बाढ़, भूचाल, श्रमिक विवाद, हड़ताल, आदि जैसी आपात स्थितियों का सामना करने के लिए आवश्यक विवेकीय शक्तियां प्रदान कर दी जाती हैं।

संक्षेप में, प्रतिनिहित विधान प्रत्यक्ष रूप से संसद के अधिनियमों से सम्बन्धित होता है और बालक जब कुछ बड़ा हो जाता है तो उससे यह मांग की जाती है कि वह अपने माता–पिता का कुछ कार्यभार अपने ऊपर लें। अतः छोटे–छोटे मामलों एवं कार्यों को वह निपटा लेता है जबकि माता–पिता मुख्य कार्य की देखभाल व प्रबन्ध करते हैं। ऐसा होने पर संसद की छोटी–छोटी बारीकियों की परवाह किये बिना विधान के अधिक गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने के लिए अधिक समय मिल जाएगा।

प्रतिनिहित विधि निर्माण की हानियां
अथवा
प्रतिनिहित विधान से खतरे
(DANGERS OF DELEGATED LEGISLATION)

प्रतिनिहित विधान प्रणाली की कड़ी आलोचना की गयी है। कुछ विचारक तो यह भी कहते हैं कि इसे अपनाने का अर्थ लोकतन्त्र का परित्याग है। इस प्रणाली के सबसे प्रमुख आलोचक इंग्लैण्ड के मुख्य न्यायाधीश **लार्ड हेवार्ट** थे। उन्होंने प्रतिनिहित विधि निर्माण को **'नवीन निरंकुशता'** की संज्ञा दी। उनके शब्दों में इस नवीन निरंकुशता का लक्ष्य है संसद को मातहत बनाना, न्यायालयों को टालना और कार्यपालिका की इच्छा या सनका को अनियन्त्रित या सर्वोपरि बनाना।''[18] इस प्रणाली के सम्भावित खतरों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए 'डोनोमोर समिति' ने लिखा है, ''**इस बात का भय है कि सेवक कहीं स्वामी न बन जाए।**''[19] रेमजे म्योर कहते हैं कि ''संसद ने अपनी वास्तविक शक्ति अधिकारी वर्ग के हाथों में सौंप दी है, जो परदे की आड़ में अत्यधिक वास्तविक शक्ति प्रयुक्त करता है।'' ऐसा कहा जाता है कि प्रदत्त व्यवस्थापन प्रणाली संसद पर अधिकारी वर्ग की विजय (The triumph of bureaucracy over Parliamnent) है।

●**व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं में कमी और कार्यपालिका की निरंकुषता की सम्भावना–** प्रतिनिहित विधान का सबसे बड़ा भय यह है कि इसके द्वारा प्रशासनिक शक्तियों का अधिनायकत्व स्थापित होने की सम्भावना बनी रहती है। कार्यपालिका के हाथों में विधि निर्माण की शक्ति आने से नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रताओं में कमी हो जाती है और कार्यपालिका की निरंकुशता की सम्भावना बनी रहती है।

*Corresponding Author: डॉ0 राधिका देवी

●**आवष्यकता से अधिक प्रत्यायोजन–** इस व्यवस्था में अन्य खतरा यह रहता है कि कभी–कभी व्यवस्थापिका आवश्यकता से अधिक प्रत्याधिकरण कर देती है। कभी–कभी अति महत्वपूर्ण मामले, जिनमें नीति सम्बन्धी प्रश्न सम्मिलित होते हैं, कार्यपालिका को प्रदान कर दिए जाते हैं। ऐसा किया जाना आपत्तिजनक है, क्योंकि नीति–निर्माण तो संसद का ही कार्य है।

●**सार्वजनिक हित की उपेक्षा–** प्रतिनिहित विधान का एक महत्वपूर्ण अवगुण यह है कि इसके अन्तर्गत प्रशासनिक अधिकारी व्यापक सार्वजनिक हित का ध्यान नहीं रखते वरन् वे अपने को विशिष्ट संगठित हितों तक सीमित रखते हैं और सार्वजनिक हित की उपेक्षा करते हैं।

●**न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप–** प्रत्यायोजित विधान का यह एक
बड़ा खतरा है कि इसमें न्यायालयों के अधिकारों को कम कर दिया जाता है। यह वस्तुतः बहुत आपत्तिजनक, है, क्योंकि इससे नागरिक न्यायालयों से अपने अधिकारों के लिए आवश्यक संरक्षण पाने के अधिकार से वंचित कर दिए जाते हैं। बहुधा ऐसे अधिनियामों में यह व्यवस्था होती है कि इनके अन्तर्गत बने नियमों पर किसी भी कानूनी न्यायालय में आपत्ति नहीं उठायी जा सकती है।

●**नियमों का अज्ञान–** प्रत्यायोजित विधान के अनुसार सरकारी विभागों द्वारा बनाए गए नियमों की एक बड़ी कमी यह होती है कि इन नियमों का व्यापक रूप से प्रचार और प्रसार न किये जाने के कारण जनता इन नियमों से अनभिज्ञ होती है, उसे कई बार यह पता नहीं होता है कि कौन–से नियम बनाए गए हैं, अतः वह इन नियमों से कोई लाभ नहीं उठा पाती है और इनके कारण होने वाली हानि का प्रतिकार नहीं कर सकती है, क्योंकि ऐसे मामलों में सरकार यह मानती है कि 'कानून की जानकारी न होना बचाव का कोई कारण नहीं हो सकता है'।(Ignorance of Law is no excuse)

●**लचीलेपन से हानि–** प्रत्यायोजित विधान का एक बड़ा लाभ यह है कि इसमें समय और परिस्थिति के अनुसार अधिकारियों द्वारा आवश्यक नियम बनाए और बदले जा सकते हैं। संसद द्वारा नियम बनाने की अपेक्षा यह पद्धति अधिक सरल और लचीली होती है क्योंकि इसमें आवश्यकता पड़ने पर नियमों में सुधार तथा संशोधन जल्दी तथा आसानी से किए जा सकते हैं, किन्तु यदि ये संशोधन अत्यधिक मात्रा में किए जाएं नियम बार–बार बदले जाएं तो इससे बड़ी अनिश्चितता और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। नियमों में संशोधन अधिक होने के कारण इनको अच्छी तरह समझाना और अनुसरण करना कठिन हो जाता है।

●**नौकरशाही को निरंकुष बनना–**प्रतिनिहित विधान में नियम निर्माण की शक्ति सरकारी अधिकारियों को प्रदान की जाती हैं। यदि यह शक्ति प्रदान करते हुए आवश्यक प्रतिबन्ध न लगाए जाएं तो इस बात की सम्भावना बनी रहती है कि सरकारी कर्मचारियों को नियम निर्माण के अत्यधिक व्यापक अधिकार प्राप्त हो जायेंगे, लोकतन्त्र स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन में परिणत हो जाएगा।

●**कर लगाने की शक्ति का प्रत्यायोजन–** प्रत्यायोजित विधान की प्रणाली का एक अत्यन्त निन्दनीय दोष यह है कि कभी–कभी संसद कर लगाने की शक्ति प्रत्यायोजित कर देती है। इससे अधिक अनुचित प्रथा और क्या हो सकती हैं? ऐसी व्यवस्था लोकतन्त्र के प्राथमिक सिद्धान्त 'बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं' (No taxation without representation)के खिलाफ जाती है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में प्रतिनिहित विधान (प्रदत्त विधि निर्माण) की प्रणाली कुछ उद्देश्यों के लिए कुछ सीमाओं तथा अधिकारियों के अन्तर्गत वैध तथा संवैधानिक दृष्टि से (वांछनीय) आवश्यक है।

❖❖❖

संदर्भ सूची :–

1– शर्मा, महादेव प्रसाद, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन–थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, किताब महल, 1974, पृ. 593–94.।

2- अवस्थी, अमरेश्वर और माहेश्वरी, श्रीराम, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन–लक्ष्मीनारायण,1972, पृ. 494.

3- चूंकि इस व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यपालिका द्वारा विधि निर्माण किया जाता है, अतः यह कार्यपालिका विधान के नाम से प्रसिद्ध है और चूंकि इस प्रकार की विधि बनाने का अधिकार कार्यपालिका का स्वयं का नहीं है, दूसरे से प्राप्त किया गया है, इसलिए इसे 'अधीन' या मातहत विधान की संज्ञा भी दी गयी है।

4- जैन तथा जैन, प्रिन्सिपल्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन लॉ, त्रिपाठी, 1973, पृ. 21.

5- उदाहरणार्थ, भारत की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा ने सन् 1935 में 206 घण्टे कार्य कर 66 बैठकों में 14 विधेयक पारित किए, सन् 1952 में संसद ने 880 घण्टे कार्य कर 123 बैठकों में 82 विधेयक पारित किए और सन् 1956 में संसद ने 1,026 घण्टे कार्य कर 151 बैठकों में 106 विधेयक पारित किए।
–जैना, बी.बी., पार्लियामेण्ट्री कामिटिज इन इण्डिया, पृ. 25.

6- रिपोर्ट ऑव द कमेटी ऑन मिनिस्टर्ड पावर्स, सी.एम.डी., 4060, 1932 पृ. 5.

7- साठे, एस. पी., एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ इन इण्डिया, त्रिपाठी, 1970, पृ.48.

8- रिपोर्ट ऑव द कमेटी ऑन मिनिस्टर्ड पावर्स, सी.एम.डी., 4060, 1932 पृ. 5.

9- साठे, एस. पी., एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ इन इण्डिया, त्रिपाठी, 1970, पृ.49.

*Corresponding Author: डॉ0 राधिका देवी

10- कार, कन्सर्निंग इंगलिश एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, 1941, प्रस्तावना।
11- प्रतिनिहित विधायन की प्रवर समिति का प्रतिवेदन, 1953 पृ. 301.
12- भारद्वाज,प्रतिनिहित विषायन–परिभाषा एवं सांविधानिक औचित्य,लोकतन्त्र समीक्षा,पृ.77.
13- दिल्ली कानून अधिनियम, 1912, 1951, एस.सी.आर. 747, 888.
14- जितेन्द्र गुप्ता, बनाम बिहार प्रान्त का प्रकरण, ए.आई.आर. 1949, एफ.सी. 175.
15- साठे, एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ इन इण्डिया, त्रिपाठी, 1970, पृ. 59.
16- दि इण्डियन लॉ इन्स्टीटयूट, न्यू देहली, केसेज एण्ड मटेरियल्स ऑन एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ इन इण्डिया, प्रथम खण्ड, पृ. 207.
17- दि इण्डिया लॉ इन्स्टीटयूट, न्यू देहली, डेलीगेटेड लेजिस्लेशन इन इण्डिया, त्रिपाठी, 1964 पृ. 84.
18- "……to subordinate parliament to evade the courts, and to render the will or the caprice, of the Executive unfettered and Supreme." -Lord Hewart
19- The Donoughmore Committee Report, p.53.

❖❖❖